Chapter-4

चतुर्थ अध्याय

<u>माण्ड गायकी की परम्परा</u> :- राजस्थान की मरुभूमि रेतीला प्रदेश होते हुए भी लोक संगीत के लिए भारत में प्रसिद्ध है तथा इसका इतिहास भी गौरवपूर्ण है । यहाँ के सुहावने लोकगीतों का तो ब्रहद भण्डार है । लोकगीतों में विशेष तौर पर माण्ड अत्यन्त शुद्ध व सहज रुप में सुनने को मिलता है ।

माण्ड की उत्पत्ति राजस्थान के जैसलमेर क्षेत्र से हुई, राजपूताने शिलालेखों में माण्ड का नाम जैसलमेर का सूचक मिलता है, यहाँ पर रहने वाले नागरिक वर्तमान में भी इस स्थान को "माण्ड-प्रदेश" से सम्बोधित करते हैं ।

माण्ड राजस्थान के सामन्ती परिवेश में पनपा हुआ एक ऐसा संगीत है जो अपने आप में एक स्वतन्त्र अस्तित्व रखता है - माण्ड का आकार-प्रकार ढूँढना आसान नहीं है यह एक ऐसा संगीत है जो शास्त्रीय संगीत एवं लोक संगीत की मध्य की कड़ी भी है । "माण्ड" सामन्ती युग में विकसित व पल्लिवत हुई । सामन्ती युग में चारों और संगीतमय वातावरण बना रहता था, जागीरदारों का वर्चस्व रहता था, राजघरानों में राजा महाराजाओं के सम्मुख उनकी प्रशंसा में नियुक्त कलाकारों द्वारा गान किया जाता था । रजवाड़ों में होने वाले प्रत्येक समारोह में गाये जाते थे, शादी-विवाह के अवसर पर राग-रंग निरन्तर रुप में चलता रहता था, तब सुबह से मध्यरात्रि व मध्यरात्रि से प्रभात तक विभिन्न प्रकार की माण्ड गाई जाती थी । इन लोक कलाकारों द्वारा परम्परागत शास्त्रीय एवं लोक संगीत का संगम दिखाई पड़ता है । इस शैली में जहाँ स्वरों का बाहुल्य रहता है, वहीं समयानुसार प्रकृति के अनुसार इसमें लोक साहित्य भी भरा-पूरा है ।

यदि हम माण्ड गायकी के क्रमिक विकास पर दृष्टि डालें तो यह रजवाड़ों से निकलकर जनता के बीच मंचो पर एक प्रदर्शनीय कला के रुप में स्थापित हो रही है।

मरु प्रदेश के जिन लोक कलाकारों ने वंशानुगत इसमें जो रचनाएँ सीखी हैं उनके द्वारा उन्हें हू-ब-हू प्रस्तुत किया जाता है, इन लोक कलाकारों द्वारा प्रस्तुत चीजों में इनका शास्त्रीय स्वरुप शुद्ध रुप में कम सुनने मिलता है, अर्थात शास्त्रीय राग के रुप में ना होकर एक लोक शैली में अधिक मिलता है तथा "माण्ड" एक विशेष गीत का नाम भी नहीं है क्योंकि माण्ड के विभिन्न प्रकार के गीत विद्यमान है ।

सांगीतिक दृष्टि से माण्ड में एक विशेष स्वरावली का बार बार प्रयुक्त होना ही माण्ड की पहचान है । जिस प्रकार किसी राग का स्वरुप उसकी पकड़ होती है, उसी प्रकार एक विशेष स्वर-समूह माण्ड की पहचान है । प्रायः माण्ड को दो तरह से गाया जाता है - एक प्रकार के अनुसार पूर्ण गीत तालबद्ध होता है व दूसरे प्रकार में गीत की स्थाई के बाद दोहा गायन उन्मुक्त होता है अर्थात उस समय ठेका बन्द कर दिया जाता है व दोहे की समाप्ति पर पुनः ठेका आरम्भ होता है । गीत को भिन्न-भिन्न छोटी-छोटी तानों व मुर्की से अलंकृत किया जाता है । यही माण्ड गायन शैली की विशेषता है ।

राजस्थान की विभिन्न रियासतों में अधिकांश शासक कला पारखी व कला प्रेमी हुए कुछ कलाकार स्वयं संगीत ज्ञाता हुए है, इनके शासन-काल में संगीत कला को पूर्णतः आश्रय मिला, इन शासकों ने मूर्धन्य कलाकारों को आश्रय देकर अपने संरक्षण में रखकर कला के विकास में अतुलनीय कार्य किया ।

दरबार में वादक, गायक-गायिकाएँ, गणिकाएँ आदि नियुक्त किए जाते थे । "१७वीं - १८वीं सदी में गुणीजनखाना, गंधर्वशाला, नृत्यगार, रंगशाला, तालीमखाना, संगीत प्रकाश नामक संस्थाओं की स्थापना हुई " ।[१]

राजा महाराजाओं के यहाँ प्रत्येक अवसर जैसे शादी-विवाह, जन्मोत्सव, विभिन्न पर्वो एवं त्यौहारों आदि पर बहुत से कलाकारों को अपनी कला कौशल दिखाने का अवसर दिया

१ राजस्थान संगीत व संगीतकार श्री प्रतापसिंह पृ.सं.- ८१

जाता था और श्रेष्ठ-कलाकार दरबार में "दरबार गायक" के रुप में नियुक्त कर लिए जाते थे। दरबार में एक ओर गायक कलाकार होते थे तथा दूसरी ओर दरबारी गण बैठते थे। कलाकार सृजन शक्ति पर संगीत में विभिन्न प्रकार के सफल प्रयोग करते थे।

शास्त्रीय संगीत के कलाकारों का अलग व लोक कलाकारों का अलग स्थान हुआ करता था । लोक कलाकारों द्वारा माण्ड गायकी का विकास दरबार में राजा-महाराजा की प्रशंसा आदि के लिए हुआ । परम्परागत इस शैली में निखार आता गया । काव्य व रस आदि का प्रयोग गीत के अनुरुप होते हुए कलाकारों का एक से दूसरे संगीत प्रेमी इसे अपनाते रहे, अर्थात संगीत ज्ञाता व गुणीजनों द्वारा ये गायकी शिष्य दर शिष्य स्वतः ही विकसित होती रही । लोक कलाकारों ने इस गायकी को सजाया, सवाँरा और निखारा तथा इसका प्रचार-प्रसार किया, कलाकारों द्वारा इस गायन शैली में (राजस्थानी) स्थानीय भाषा का ही प्रयोग किया गया तथा उस्तादों, गुणीजनों ने संगीत की इस शैली में चार चाँद लगाए ।

भारतीय संगीत में घरानों का अपना अलग ही महत्व है, फिर चाहे वो दक्षिण भारतीय संगीत हो या उत्तर भारतीय संगीत । घरानेदार शिक्षा संगीत में वर्षों से चली आ रही है तथा वर्तमान में भी घरानों का महत्व स्वीकारा गया है । गायकी के अंदाज को तथा उनकी विशेषताओं को घराने द्वारा ही हम स्पष्ट कर पाते हैं तथा घराना पीढ़ी दर पीढ़ी प्रतिभावान व प्रतिष्ठित गुरु की आवाज पर आधारित होता है, जिसे शिष्यों द्वारा अपनाया जाता है । घराना परम्परा में परम्परागत चीजों के साथ यह परम्परा पीढ़ी दर पीढ़ी ज्यों की त्यों ही आगे चलती जाती है, फिर चाहे वो शास्त्रीय संगीत हो या फिर लोक संगीत । घरानों का तात्पर्य पीढ़ी दर पीढ़ी परम्परागत सांगीतिक विशेषताओं को स्वीकार करना है ।

लोक संगीत में माण्ड गायकी भी एक परम्परागत गायन शैली है, दरबार व सामन्ती परिवेश में गाई जाने वाली ये धीर गंभीर मधुर गायकी पीढ़ी दर पीढ़ी शिष्यों द्वारा अपनाई गई, उस्तादों-गुणीजनों द्वारा इस गायकी को शिष्यों द्वारा आगे बढ़ाया गया किन्तु जिस

प्रकार हम शास्त्रीय संगीत के विभिन्न घराने आज भी पाते हैं उस प्रकार माण्ड गायकी के घराने हमें नहीं मिलते फिर भी यह गायकी परम्परागत है । शिष्य दर शिष्य इस कला को स्वीकारा जाता है, कुछ विशिष्ट जाति के लोक कलाकारों जैसे लंगा आदि अपनी ही जाति के समूह के लोगों में गुरु-शिष्य परम्परा का निर्वाह करते हैं तथा माण्ड गायकी परम्परा को आगे बढ़ा रहें हैं, किन्तु इतने पर भी इस गायकी में इन कलाकारों के गुरु-शिष्य दर शिष्य की श्रृंखला या वंशावली हमें प्राप्त नहीं हो पाती। इन के द्वारा ये गायकी स्वतः ही शरीर में रक्त की धारा के रुप में बहती आ रही है। किसी भी क्षेत्र में आगे आने के लिए गुरु की अहम् भूमिका रहती है। बालक को एक कलाकार बनने में एक पथ-प्रदर्शक की आवश्यकता होती है फिर चाहे उसे वो ज्ञान अपने माता-पिता से ही क्यों ना मिला हो, बालक के प्रथम-गुरु माता-पिता होते हैं उसे आगे आने का ज्ञान प्रदान करते हैं, हमारी संस्कृति में गुरु को ईश्वर से भी ऊँचा स्थान दिया जाता है।

दोहा :- गुरू गोविन्द दोनों खड़े, काके लागूँ पाँए
बलिहारी गुरू आपकी गोविंन्द दियो बताए।

अतः गायक को कलाकार बनाने के पीछे श्रेष्ठ गुरु का हाथ होता है । कोई भी व्यक्ति किसी ना किसी गुणी अनुभवी व्यक्ति का शिष्य पहले बनता है, तथा फिर एक कलाकार !

पदम्श्री से सम्मानित अल्लाह जिलाईबाई माण्ड गायिका के रुप में जानी जाती हैं, दुर्भाग्यवश आज वो हमारे बीच नहीं हैं किन्तु आज भी उनके द्वारा गाई माण्ड हमारे साथ है, उनकी मधुर आवाज आज भी हमारे साथ है । वो एक श्रेष्ठ दरबारी गायिका रहीं किन्तु संगीत के प्रथम सोपान से लेकर शोहरत के अन्तिम शिखर तक पहुंचने के लिए उन्होंने भी गुरु शिष्य परम्परा का निर्वाह किया ।

लोक कला मण्डल (उदयपुर) से प्राप्त एक भेंटवार्ता के कुछ अंश मुझे सुनने को प्राप्त हुए उसके अन्तर्गत उन्होंने उस समय की वस्तुस्थिति से हमें अवगत कराया -

"उन्होंने हमें बताया कि उस समय प्रतिदिन रियाज़ करते थे, बड़े-बड़े उस्तादों द्वारा संगीत की महफिलें होती थीं तथा राजा महाराजा माण्ड गायकी सुनना पसंद करते थे । उस्ताद आदि रियाज़ को महत्व देते थे और कठोरता से नियम का पालन करते थे तथा गुरु द्वारा दिए गए निर्देष का पालन शिष्य को करना अनिवार्य होता था।"[१]

माण्ड गायकी की पर्याय माने जानेवाली श्रीमती अल्लाह जिलाईबाई ने प्रतिष्ठित उस्तादों से सीखी गई कला को अथक परिश्रम से तथा निरन्तर साधना से सुरक्षित रखा तथा अपने ज्ञान को कई शिष्यों में बाँटा । उन्होंने माण्ड गायकी की कला को जन-जन तक पहुँचाने का सफल प्रयास किया किन्तु इतना होने पर भी आज हमें उनके द्वारा निर्मित घराना नहीं मिलता है, इस प्रकार सामन्ती युग में अनेकों कलाकार ऐसे हुए है जो शास्त्रीय संगीत के साथ-साथ माण्ड गायकी में भी पारंगत थे, जिनका विवरण हमें प्राप्त ही नहीं हो पाता, उनकी कला उन्हीं के साथ चली गई ।

---

१ "उदयपुर" लोक कला मण्डल - "भेंटवार्ता अंश"

"श्री प्रतापसिंह जी की पुस्तक "राजस्थान संगीत और संगीतकार" द्वारा हमें उस काल के कुछ माण्ड गायकों की जानकारी प्राप्त हो सकी।

- ***जीवण सेन*** :- सुजान-गढ़ के सेन् कुल के जीवण सेन जी व इनके भाई लाखूजी, तख्तूजी, भादरजी गाँव में ही रहे, ख्यात गायकी के साथ माण्ड गायकी इन भाइयों की विशेषता थी, जीवणसेनजी ने उदयपुर, बीकानेर आदि के दरबारों में संगीत के कार्यक्रम दिए थे ।
- ***पन्नालालजी*** :- बीकानेर नरेश महाराजा डूँगरसिंह के गुणीजनखाने में "पन्नालाल" नाम के कलाकार नियुक्त थे, आपका जन्म १८६० में हुआ तथा आप एक अच्छे शास्त्रीय एवं माण्ड गायक हुए। इनका देहान्त ई १९४०. में ८० वर्ष की आयु में अपने गाँव भालेरी में हुआ ।
- ***गोपालजी*** :- गाँव गोपालपुरा, तहसील सुजानगढ़ के निवासी गोपालजी अपने समय के सुप्रसिद्ध कलाकार माने जाते थे, आप पंच पटिया कलाकार माने जाते थे अर्थात गायन वादन नृत्य के साथ कवित्त आदि में भी दक्ष थे, गायन में ख्याल, ध्रुवपद धमार टप्पा आदि में पारंगत तो थे ही किन्तु ठुमरी, कजरी एवं "माण्ड" गायकी आप की विशेषता थी ।
- ***कानाराम*** :- इनका जन्म १९६० ई. में हुआ, संगीत के क्षेत्र में इनका नाम काफी लोकप्रिय रहा, इनके समय में राजलदेसर के "जसवंत बैण्ड" का देश में काफी नाम था, जिनकी भारत के बड़े-बड़े नगरों में प्रतियोगिताएँ हुआ करती थी तथा कानाराम इस बैण्ड के प्रमुख थे, उस जमाने में बैण्ड के माध्यम से विभिन्न प्रकार की राग-रागिनियाँ तथा "माण्ड गायकी" आदि की रचनाएँ ही प्रस्तुत की जाती थी, आप कार्यक्रमों के लिए देश के विभिन्न स्थानों पर जाते रहते थे, आपका देहान्त ७२ वर्ष की आयु में १९८२ में हुआ ।

- ***शिवदयाल, चन्दनमल*** :- गाँव राजलदेसर के ये दोनों भाई जैसाराम के पुत्र थे, जो कि कानाराम के भाई थे । तथा दोनों ने गायन तथा वादन की शिक्षा अपने पिता जैसाराम जी से ग्रहण की । इन्होंने गाँव में एक बैण्ड की स्थापना की जिसमें दोनों भाई मास्टर बनें, तथा अपने चाचा श्री कानाराम को इस बैण्ड का प्रमुख बनाया । इस बैण्ड का पूरे देश में नाम था तथा बड़े-बड़े नगरों में ये बैण्ड बुलाया जाता था, ये बैण्ड आज के फिल्मी धुनों जैसा बैण्ड नहीं था, अपितु इस बैण्ड के माध्यम से विभिन्न प्रकार की राग-रागिनियाँ, माण्ड गायकी की रचनाएँ आदि तैयार की जाती थीं, जिनको बड़े बड़े नरेश तथा सेठ सहूकार सुनते थे, इस बैण्ड की कुछ विशेषताएँ थी, इसमें परिवार के सगे सम्बन्धी ही कार्यरत थे ।
- ***नारायण राम*** :- संगीत की प्रारम्भिक शिक्षा आपके पिता पूनाराम जी से मिली, आप माण्ड के अच्छे गायक थे । ८-९ वर्षों तक आप अपने छोटेभाई मुकुन्दलाल के साथ नाथद्वारा के श्री नाथजी के मन्दिर में मृदंग बजाते थे, ६५ वर्ष की आयु में आपका देहान्त हो गया ।
- ***अब्दुल कादिरखाँ*** :- आपका जन्म १९०५ जयपुर रियासत की तहसील श्री माधोपुर में हुआ, ख्याल ठुमरी माण्ड व तराना बाँधने में माहिर अब्दुल कादिरखाँ आगरा घराने के प्रसिद्ध गायक रहे ।
- ***जगन्नाथ*** :- आप उदयपुर नरेश के "संगीत प्रकाश" के गुणी गायक थे, शास्त्रीय संगीत के साथ-साथ "माण्ड" व ठुमरी गायन में आपकी विशेषता थी । १९६३ में लगभग ८० वर्ष की आयु में आपका निधन हो गया ।
- ***बलदेवजी*** :- राजस्थान की माण्ड गायिका गवरी देवी के पति बलदेव जी "माण्ड" गायकी के अच्छे गायक थे और बीकानेर गुणीजनखाने में नियुक्त थे ।

- ***गंगा विशतराव*** :- सवाई माधोपुर जिले के ग्राम सारसोप निवासी गंगा विशतराव गायन तथा तबला वादन दोनों के कुशल कलाकार थे । गायन में ख्याल गायकी के साथ ही माण्ड तथा भजन गायन में भी दक्ष थे । १९८५ में आपका देहान्त हो गया।
- ***बिहारी "कत्थक"*** :- चूरु जिले के बीदासर निवासी बिहारी का जन्म सन १९२६ में हुआ परिवार में संगीत नृत्य का ही वातावरण था । गायन तथा कत्थक नृत्य अपने बुजुर्गों से सीखा किन्तु आगे चलकर गायन को अपनाया । सुगम संगीत, लोकगीत तथा राजस्थानी "माण्ड" गायन में विशेष लोकप्रियता अर्जित की तथा २८ फरवरी १९९४ में आपका देहान्त हो गया ।
- ***राजकुमार रिज़वी*** :- आपका जन्म राजस्थान के शेखावटी मंडावा ठिकाने के अन्तर्गत एक गाँव में हुआ । गायन की प्रारंभिक तालीम पिता नूर मोहम्मद से प्राप्त हुई तथा माण्ड गायकी भी पिता से सीखी, गायन के बाद पं.रविशंकर से सितार सीखा, आकाशवाणी में गायन के साथ सितार वादन भी किया । आगे चलकर गज़ल गायकी को अपनाया, राजस्थान के समृद्ध लोक संगीत का माधुर्य होने से आपकी गायकी में एक अलग सी कशिश है, ये कशिश ही राजस्थान की मरुधरा की माण्ड गायकी की फितरत है ।
- ***दुल्हेखाँ*** :- आप सीकर दरबार में गायक रहे अपने ताऊ नबीबबख्श के देहान्त के बाद उनका पद इन्हें मिला, आपकी गायन की शिक्षा पिता खुदा बख्श से हुई माण्ड गाने में आप विशेषज्ञ रहे ।
- ***हनीफखाँ*** :- आपका जन्म १९२४ ई. के लगभग हुआ। प्रारम्भिक शिक्षा आपके वालिद से शुरु की पिता की मृत्यु के बाद, बीकानेर के ख्याति प्राप्त कलाकार फकीर मोहम्मद के शागिर्द बने, आपने बीकानेर की सुप्रसिद्ध माण्ड गायिका अल्लाह जिलाई के साथ अनेक वर्षो तक संगत की। "[१]

---

१ राजस्थान संगीत और संगीतकार, श्री प्रतापसिंह चौधरी जी. पृ. सं. " ४७ से क्रमशः ।

इस प्रकार कई दरबारी गायकों व कलाकारों द्वारा शास्त्रीय संगीत के साथ-साथ माण्ड गायकी को भी अपनाया तथा माण्ड गायन के द्वारा भी राज-दरबार में अपना स्थान बनाया, अपनी पहचान माण्ड गायक के रुप में निखारी किन्तु इन सभी बातों के साथ-साथ यदि हम इन सभी कलाकारों की वंशावली पर दृष्टि डालें तो पातें हैं कि इन्होंने माण्ड गायकी को सजाया, सवाँरा, निखारा किन्तु शिष्यों द्वारा इसे एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में प्रचारित नहीं किया । कई कलाकारों ने ये कला व्यक्तिगत रुचि द्वारा अपनाई और परम्परागत रुप में निखारी, सजाई और राजा-महाराजा के सम्मुख प्रस्तुत की ।

इस प्रकार उस काल में अनेक ऐसे कलाकार भी हुए, जिनके नाम से हम अनजान हैं, उनकी पहचान, उनकी गायकी उस काल में ही सिमट कर रह गई, किसी कारण से ना उनका कोई शिष्य हुआ, और ना कोई वंश परंम्परा या फिर उनके वंश में से किसी ने इस गायकी को नहीं अपनाया, ऐसे बहुत से कारणों से उन गायक कलाकारों से हम परिचित नहीं हो पाए जो कि माण्ड गायकी को अत्यन्त प्रभावी रुप में गाते थे किन्तु समय की परतों में उनकी पहचान कहीं खो गई । कुछ दरबारी गायक ऐसे भी हुए जिनका स्थान कम प्रख्यात कलाकारों में आता था, उस काल के जानेमाने और प्रतिष्ठित कलाकारों के वर्चस्व के कारण कुछ कलाकारों को अपनी कला का प्रभाव दरबार में पूर्णत: छोड़ने का अवसर नहीं मिला जिन्होंने माण्ड गायकी को अपनाया तो सही किन्तु माण्ड गायक के रुप में उन्हें पहचाना नहीं गया । कुछ प्रख्यात कलाकारों के चलते उनकी कला को कोई स्थान नहीं मिल सका ।

माण्ड प्रारम्भ से ही दरबार में गाई जानेवाली कला रही । दरबार में, महफिलों में कभी एक गायक अपना रंग जमाता तो कभी सामुहिक रुप में व माण्ड गायकी ऐसी गायकी रही जो कि एकल रुप में भी प्रभावी रही व सामुहिक रुप में भी । समुह में माण्ड गायन तथा विभिन्न वाद्यों की उपस्थिती माण्ड गायकी को अत्यन्त कर्णप्रिय बनाती है। ऐसी स्थिती में दरबार में उपस्थित कलाकारों के समुह में बहुत से ऐसे कलाकार हुए होगें जो कि सदैव

सहायक कलाकार के रुप में ही अपनी उपस्थिती दर्ज कराते - माण्ड शैली के अच्छे प्रस्तुतकर्ता होते हुए भी कभी भी व्यक्तिगत रुप में अपनी पहचान नहीं बना सके । सहयोगी कलाकार के रुप में ही जाने जाते रहे । उनकलाकारों के नाम का वर्चस्व नहीं होने के कारण उनकी कला को उचित मान सम्मान व ख्याति नहीं मिल पाई और उनकी कला उन्हीं के साथ चली गई ।

*****

जन जीवन पर प्रभाव :- स्वतन्त्र भारत का एक प्रदेश राजस्थान जिसकी अपनी अलग पहचान, अपने इन्द्र धनुषीय रंगों से भरी सांस्कृतिक परम्पराएँ । दूर-दूर तक रेत के टीले ही टीले, तथा निवासियों के कच्ची-पक्की झोपड़ियों के घर, उनमें भी कलात्मकता की भरमार। गोबर से पुते इन घरों के आँगन में बनी रंगोली। घर के आँगन में एक तरफ बना चूल्हा तथा दूसरी ओर नीम के पेड़ नीचे बिछी चारपाई। सूर्यदेव के आगमन की पहली किरण की घरों पर दस्तक, वहीं से शुरु होती हुई ग्रामीण जीवन की दिनचर्या । दूर-दूर से आनेवाले हवा के झोकों में भी सुन्दर मधुर ध्वनि का एहसास अत्यन्त सहज, सरल और हृदयग्राही ।

लोक संस्कृति कि सौधी मिट्टी की खुशबू जो सदैव ज़िन्दा रहती है उसी प्रकार यहाँ पर रहनेवाले लोगों के हृदय में बसा यहाँ का सुमधुर संगीत । इन स्वर लहरियों की बरखा से समूचा रेगिस्तान अछूता नहीं, यहाँ के निवासियों के हृदय में बसा अनोखा उत्साह, उल्लास सकारात्मक सोच इन्हें सबसे अलग पहचान देती है । इन्हीं विचारों द्वारा भावों को एक कड़ी में बाँध कर स्वर लहरियों के माध्यम से राजस्थानी माण्ड गायन शैली प्रस्तुत करना राजस्थानी धरा की खुशबू को दूर-दूर तक फैलाता है ।

राज दरबारों में गाई जानेवाली माण्ड, जीवन के प्रत्येक पहलू को दर्शाती है, राजसी परिवेश मे गाई जानेवाली ये शैली आज आम जनता की रुचि की शैली बन चुकी है आज हर जगह माण्ड ही मुख्यतः गाया जाता है ।

राजस्थान को दर्शाता है "माण्ड", ये गायकी राजस्थानी परिवेश से ओत-प्रोत सभी के हृदयों में रची बसी है, तब व अब की प्रस्तुति में थोड़ा अन्तर जरुर आया है पहले ये गायकी कलाकारों द्वारा राजा-महाराजा के समक्ष ही प्रस्तुत की जाती थी, किन्तु अब इस गायकी का प्रस्तुतिकरण मंच प्रदर्शन के रुप में भी होता है जो कि आम श्रोताओं के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है। अब पहले जैसा राजा-महाराजा का समय तो है नहीं अब तो स्वतन्त्र भारत का स्वतन्त्र नागरिक इस शैली को सुनता व सीखता है । इसलिए माण्ड गायन शैली

राजसी परिवेश में पनपी, पली पड़ी और अब आम जनता में विकसित हो रही है । इस शैली में आज भी पारंपरिक गीतों का ही वर्चस्व रहता है तथा इन गीतों के अन्दर छुपे हुए भावों को आज भी उसी रुप में प्रस्तुत किया जाता है, प्रत्येक अवसर पर माण्ड गाई जाती है । आज भी लंगा-मांगणियार आदि कई जातियों के लोग अपने घरों में माण्ड गाते हैं । राजा-महाराजा के दरबार में गाई जानेवाली "माण्ड" शैली गानेवाले विभिन्न कलाकार दरबारी गायक के पद पर नियुक्त किए जाते थे तथा राजाओं के द्वारा इनके रहने योग्य स्थान आदि की व्यवस्था की जाती थी, इनके घर राज-दरबार (महल) से कुछ ही दूरी पर बनवाए जाते थे, इन सभी लोक-कलाकारों को एक ही स्थान दिया जाता था, उसी आधार पर आज भी इन कलाकारों के घर क्रमशः पास-पास होते हैं। उदयपुर, जैसलमेर, बाड़मेर आदि स्थानों पर लोक कलाकारों का अलग मौहल्ला है, जहाँ पर ये लोग सभी एक साथ निवास करते हैं तथा इस पारंम्परिक शैली का निर्वाह करते आ रहे हैं, इनके घरों में आज इन्हीं गीतों को गाया-बजाया जाता है अर्थात समाज में होनेवाली प्रत्येक गतिविधियों में ये लोग माण्ड गायन शैली को उत्साह व मधुरता से गाते हैं ।

राजा-महाराजा, सामन्तों आदि के काल समाप्त होने के बाद आज भी कुछ समृद्ध व्यक्ति इन्हें अपने घरों में आयोजित कार्यक्रमों में गाने-बजाने को बुलवाते हैं, आज भी इन जातियों में महिलाएँ शादी-विवाह, मृत्यु अर्थात सुख-दुख दोनों में अपने जज़मानों के यहाँ गाने जाती है। माण्ड आज भी विभिन्न उत्सवों, मेलों आदि में इन कलाकारों का गायन-वादन हुआ करता है तथा हमें पारम्परिक गीतों को सुनने का अवसर प्राप्त होता है।

सरकारी व गैर सरकारी विभिन्न ऐसी संस्थाएँ है जो कि समय पर इन कलाकारों की प्रस्तुति का आयोजन करती हैं । प्रत्येक वर्ष राजस्थान के जैसलमेर क्षेत्र में जनवरी/फरवरी माह में तीन दिवसीय मेला होता है । बीकानेर में अल्लाह जिलाईबाई की याद में संगीत समारोह का आयोजन किया जाता है, इसके अन्तर्गत भिन्न-भिन्न कोटि के कलाकारों को अपनी कला का प्रदर्शन करने का अवसर प्राप्त होता है ।

राजस्थान की राजधानी जयपुर में प्रतिवर्ष अनेक साँस्कृतिक कार्यक्रमों व संगीत सभाओं का आयोजन किया जाता है, इसके अन्तर्गत बहुत से लोक-कलाकारों को अपनी प्रस्तुति देने का अवसर मिलता है तथा इन कार्यक्रमों द्वारा उन कलाकारों को सम्मानित भी किया जाता है इस प्रयास द्वारा इस पारंम्परिक मधुर शैली को सुरक्षित रखा जा रहा है । बहुत से कलाकार संगीत संस्थाओं से जुड़े हुए हैं जो अपनी इस कला को बाँट कर इसका प्रसार-प्रचार कर रहें हैं, विभिन्न संस्थाओं द्वारा माण्ड शैली में प्रयुक्त होनेवाले वाद्यों पर भी विशेष ध्यान दिया जाता है, इन लोक वाद्यों की बनावट, प्रत्येक की अलग-अलग विशेषता को ध्यान में रखकर तथा प्रस्तुतिकरण को प्रभावी बनाने के लिए इन का उपयोग आदि विषयों पर भी व्याख्यान आदि का आयोजन किया जाता है, जिनके द्वारा इन लोकवाद्यों की उपयोगिता स्पष्ट हो सके । वर्तमान में इन जातियों की महिलाएँ जब घरों में गाने-बजाने जाती हैं तो मुख्य रुप से ढोल या ढोलक का ही प्रयोग करती है, उसी की थाप पर इनके सुर स्थिर हो जाते हैं, किन्तु यही गायकी जब एक मंच पर प्रस्तुति होती है तो अनेक लोक वाद्यों की उपस्थिति दर्ज हो जाती है, अवसर की नज़ाकत द्वारा इसका प्रस्तुतीकरण किया जाता है ।

लोक कलाकारों व शास्त्रीय कलाकारों दोनों ही ने इस गायन शैली को अपनाया है किन्तु दोनों कलाकारों के अपने अलग-अलग विचार हैं। कुछ शास्त्रीय कलाकार इस गायकी को शास्त्रीय मानते हैं, उनके अनुसार यह एक राग है तथा राजस्थान के लोक-कलाकार इसे एक लोक गायन शैली का दर्ज़ा देते हैं, तथा पारम्परिक गीतों को इसके अन्तर्गत गाते बजाते हैं, और लोक गायकी मानतें हैं, जिसमें जीवन से जुड़े खट्टे-मीठे सभी पलों को व्यक्त करते हैं। शास्त्रीय कलाकार इसको ठुमरी गायकी के समान्तर मानतें हैं, जिस प्रकार ठुमरी में कलात्मकता लाने के लिए, काव्य के अनुरुप स्वरों के लगाव पर ध्यान दिया जाता है उसी प्रकार इस गायकी को भी कलाकार के कौशल पर निर्भर माना जाता है। माण्ड के स्वरों में अन्य कुछ रागों के स्वर समूह जोड़ देने पर "मिश्र माण्ड" आदि को गाया जाता है।

शिक्षा के क्षेत्र में राजस्थान के विद्यालयों, महाविद्यालयों व राजस्थान विश्वविद्यालय में संगीत के पाठ्यक्रम में स्पष्ट रुप में रेखांकित करके सम्मिलित नहीं किया है किन्तु फिर भी लोक कला में माण्ड का बाहुल्य होने से शैक्षणिक संस्थानों से अछूता नहीं है, समय-समय पर माण्ड गाई व बजाई जाती है । संगीत संस्थाओं द्वारा विभिन्न संगीत प्रतियोगिता का आयोजन किया जाता है उनमें भी प्रतियोगी माण्ड गातें हैं अतः राजस्थान की कला संस्कृति का प्रतिनिधित्व "माण्ड गायन शैली" ही करती है ।

*****

वर्तमान माण्ड गायकी का महत्व

माण्ड :- मेरे अनुसार एक ऐसी विशिष्ट गायन शैली है जो कि अपनी अलग पहचान बनाए हुए है । देश ही नहीं विदेशों में भी माण्ड नाम आते ही राजस्थानी मरुधरा का दृश्य सचित्रित हो जाता है । किन्तु माण्ड गायकी की उत्पत्ति कब कहाँ हुई इसका सुनिश्चित जवाब देना तो हमारे लिये कठिन है। गुणीजनों के अनुसार यह गायकी रजवाड़ों से राज्यसी परिवेश में पनपी इस मान्यता को आधार मानकर हम मानते हैं कि यह गायकी सामन्ती परिवेश से निकली, और कुछ विशिष्ट जातियों द्वारा इस गायकी को श्रेष्ठ स्थान दिलाया गया ।

इन जातियों द्वारा कुछ विशेष गीत की रचना कर राज-दरबार में महाराजा की प्रशंसा में गाना और अत्यन्त ही प्रभावी बनाना मुख्य था - जहाँ भारतीय संगीत की दो धाराएँ - एक शास्त्रीय संगीत व दूसरी लोक संगीत प्रचार में थी वही कुछ विशिष्ट जाति के गायक कलाकारों ने संगीत की यह तीसरी धारा का प्रवाह इतने प्रभावी तरीके से किया कि "माण्ड" राजस्थान में गढ़-गायकी के रुप में पल्लवित हुई ।

इस जाति के लोगों ने गुरु-शिष्य परम्परा को अपनाते हुए इस गायकी को विशिष्ट स्थान दिलाया । ये परम्परा वर्तमान में भी चली आ रही है और इन गायक कलाकारों के घरों में आज भी तीन-चार वर्ष की अवस्था सें बालक स्वतः ही गाने लगता है, तथा उसके गले में वो हरकतें अपने आप ही निरन्तर विकसित होने लगती हैं, जिसे अत्यन्त प्रयास करके सीखा जाता है, जैसे-जैसे बालक बड़ा होता है, गले में हरकतें भी स्वतः ही आने लगती हैं - क्योंकि बाल्यावस्था होती ही ऐसी है - जो बालक देखता है वही करता है । एक गायक कलाकार के घर का वातावरण निःसंदेह ही संगीतमय होता है । जब से उस बालक का जन्म हुआ तभी से वह संगीतमय वातावरण में रहता है । जिस प्रकार बालक थोड़ा-थोड़ा बड़ा होने पर चलना बोलना स्वतः ही सीखता है उसी प्रकार उस संगीतमय वातावरण का असर भी उस पर स्वतः ही होने लगता है, कहा भी जाता है कि संगीत में तो तानसेन

बनने से पहले कानसेन होना आवश्यक है अर्थात गायक होने से पहले संगीत सुनने की समझ आवश्यक है, इस प्रकार बालक बाल्यावस्था से संगीत सुनने के कारण स्वर की समझ भी धीरे-धीरे सीख जाता है ।

जिस प्रकार बालक जब चलना सीखता है, तो पहले एक दो बार गिरता है - संभलता है, अपने लड़खड़ाते कदम बढ़ाता हुआ धीरे-धीरे स्थिर होता है उसी प्रकार एक कलाकार के यहाँ भी बालक जन्म से संगीत सुनता है, जब वो बोलने लगता है तो अपने ही परिवार के लोगों के समान गाने का प्रयास अपनी तुतलाती भाषा में करता है - जब उसका उच्चारण साफ होता है और उसके द्वारा गाए जानेवाले गीत में भी उसी का प्रभाव पड़ता है, समयानुसार वो अपने परिवार के सदस्यों के समान गाने के प्रयास में सफल होने लगता है और उन्हीं की भाँति कण मींड़, मुर्की आदि का प्रयोग करने लगता है गले में हरकतें भी स्वतः ही आने लगती हैं जो कि अत्यन्त ही मनमोहक होती हैं किन्तु ये सभी होने के उपरान्त भी इनकी जाति में गुरु-शिष्य परम्परा का निर्वाह किया जाता है । माण्ड गायकी की परम्परा मुख्यतः लंगा और मांगणियार जाति के लोगों द्वारा ही आगे बढ़ाई गई है ।

मेरे द्वारा किए जा रहे शोध के अन्तर्गत मैनें इस जाति के विभिन्न कलाकारों से सम्पर्क किया तथा वर्तमान गायकों से जानने का प्रयत्न किया ।

वर्तमान में माण्ड गायकी की परम्परा का निर्वाह करनेवाले कलाकार - जैसलमेर, बीकानेर, उदयपुर, जोधपुर, बाड़मेर व जयपुर में निवास कर रहें हैं ।

लंगा जाति के कलाकार लोग जैसलमेर व बाड़मेर में रहते हैं । (जैसलमेर-बाड़मेर) लंगा जाति के सम्पर्क में आने के पश्चात् मुझे ऐसा ज्ञात हुआ कि ये सभी कलाकार गुरु-शिष्य परम्परा का निर्वाह करते हैं । इनकी गायकी शुद्ध शास्त्रीय संगीत से भिन्न होती है तथा इनकी भाषा में रागों के नामों के उच्चारण, स्वरों के उच्चारण में भी शास्त्रीय संगीत के अनुसार होते हैं, तथा शास्त्रीय रागों के समान माण्ड गायकी को भी समयानुसार बताते हैं वे शास्त्रों से अनभिज्ञ, ज्ञान रखनेवाले गुरु-शिष्य (मौखिक-परंम्परा) को आगे बढ़ाते हुए इस

गायकी को आगे बढ़ा रहें हैं । माण्ड गायकी के विभिन्न पहलुओं, वर्तमान में अवस्था व परम्परागत गायकी के स्वरुप को बनाये रखने में आनेवाली बाधाओं को जानने का प्रयत्न किया । परन्तु जाने-अनजाने इनकी गायकी में एक ऐसी बात है कि ये शास्त्रीय संगीत ना होकर भी इसी पर आधारित कण, मीड़, मुर्की, खटका आदि का प्रयोग इस प्रकार करते हैं जैसे इन्हें शुद्ध शास्त्रीय संगीत की सम्पूर्ण जानकारी हो । ये अपनी गायकी में तानपुरे का प्रयोग उचित नहीं मानते हैं इनके अनुसार कमाइचा या सारंगी ही श्रेष्ठ वाद्य है, वर्तमान में कमाइचा का प्रयोग अधिक किया जाता है ।

इस जाति के कलाकारों का कहना है कि वर्तमान में गायकी को अधिक प्रभावी बनाने के लिए कमाइचा के साथ-साथ हारमोनियम, खरताल, मोरचंग, अलगोजा, बीन, ढोल, ढोलक, व शहनाई आदि का प्रयोग किया जाने लगा है ।

लंगा जाति के लोगों की सारंगी दो प्रकार की होती है जो कि सिंधी सारंगी और गुजरातण सारंगी कहलाती है । देखने पर ज्ञात होता है कि सिंधी सारंगी थोड़ी बड़ी होती है और गुजरातण सारंगी सिंधी सारंगी के अपेक्षाकृत छोटी होती है, व इसमें तार भी कम होते हैं ।

जैसलमेर के ही एक लोक-कलाकार वसीर खाँ के अनुसार माण्ड गायकी में कमाइचा का प्रयोग सर्वाधिक होता है, उन्हीं के अनुसार इसका तुम्बा आम की लकड़ी का बना होता है, ऊपर से चमड़ा मढ़ा होता है, इसमें चार-तार स्टील के होते हैं, चार तार पीतल के होते हैं, बकरे की खाल के तीन तार होते हैं, इसका वादन गज के द्वारा किया जाता है जिसमें की घोड़े के बाल का प्रयोग किया जाता है ।

इस जाति के लोग मुख्यतः राजपूतों व ठाकुरों के यहाँ जाकर गाते थे, और वो लोग इन्हें कभी कोई जानवर जैसे हाथी, ऊँट आदि दान में दिया करते थे, कभी स्वर्ण आभूषण, कभी रुपया पैसा भी मिलता है ।

लंगा जाति के कलाकारों से मिलकर मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि इन कलाकारों के

संगीत में तालपक्ष भी इतना ही प्रबल होता है, जितना की इनका गायन पक्ष । इनके द्वारा ढोल व ढोलक पर बजाए गए कायदे, पल्टे, परन आदि इतने प्रभावी होते हैं कि एक शास्त्रीय ज्ञान रखनेवाले कलाकार को भी सोचने पर मजबूर कर देते हैं । इस जाति के कलाकारों में महिलाएँ भी संगीत में प्रवीण होती हैं वे भी राजपूतों के यहाँ शुभ-अवसर पर गाने जाती है व गायन करते समय स्वयं ही ढोलक या ढोल का वादन करती है तथा जाने-अनजाने ढोलक पर ऐसी थाप लगती है कि शास्त्रीय ज्ञाता हो - तात्पर्य यह है कि इन कलाकारों की कला कहीं ना कहीं शास्त्रीय संगीत पर आधारित है ।

राजा-महाराजाओं के समय से ये लोग गाते बजाते आ रहें हैं, महिलाएँ तब भी गाती थीं और आज अब भी । प्रत्येक अवसर पर अलग-अलग माण्ड गाना ही इनकी शैली है अर्थात समय-अवसर को ध्यान में रखकर माण्ड गीतों को गाना ही इन कलाकारों की विशेषता हैं - प्रत्येक अवसर पर गीत हमें सुनने मिलते हैं तथा इन गीतों को अलग-अलग नामों से जाना जाता है - जैसे मदकर, बधावो, धुमालड़ी, अरणी, झेदर, हालरियो, कलाली, डोडा, जागड़ा ।

राजपूतों के यहाँ जब विवाह अवसर होता है तो मुख्यतः ये गीत ही गाये जाते हैं, इनमें जब जंवाई लड़की को बिदा करा कर ले जाता है तो वधु पक्ष के लोग ये गीत गाते हैं । उस गीत को हम मदकर कहते हैं तथा (दुल्हन) के स्वागत में सभी वर को बधाई देतें हैं, तो इसी प्रकार बालक के जन्म पर झूला-झूलाते हुए हालरिया गाया जाता है, इस प्रकार प्रत्येक अवसर पर कोई ना कोई गीत अवश्य गाया जाता था । यहाँ तक की राजा की सवारी के निकलते समय उनकी प्रशंसा में भी गीत गाते थे । राजदरबार में महफिलें होती थी तब कलाली जैसे गीत गाए जाते थे ।

राजा जब शिकार करने जाते थे तो उस समय उनके साथ संगीतकार व गायक भी जाते थे, तथा वहाँ पर गीत गाए जाते थे, इन गीतों में शिकार का वर्णन अत्यन्त ही सजीवता से किया जाता था ।

उसी प्रकार राजा-महाराजा युद्ध के लिए जाते थे तो गायक कलाकार अपनी गायकी व वादन से सैनिकों को उत्साहित करते थे, उन्हें उत्साह व जोश दिलाते थे - इस गीत को घाटी रा नगारा कहा जाता था । वादक नगाड़ा वादन इतने उत्साह व जोश से करते थे कि सैनिकों में उर्जा का संचार स्वत: ही होता था ।

लंगा व मांगणियार जाति के अतिरिक्त कुछ अन्य जाति के लोग भी माण्ड को गाते हैं । किन्तु माण्ड कलाकार चाहे वो किसी भी जाति का क्यों ना हो वो इस कला को रजवाड़ों से ही जुड़ा मानते हैं - वर्तमान में चाहे कलाकार अपनी कला का प्रदर्शन किसी भी रुप में करे किन्तु तब से लेकर अब तक का संगीत इतिहास यही कहता है कि माण्ड गायकी धीर-गंभीर एवं विभिन्न रसों से ओत-प्रोत व श्रेष्ठ काव्य लिए है ।

वर्तमान में माण्ड गायकी में परिवर्तन होना कलाकार की परिस्थिति कहें या आम जनता की रुचि । संगीत के इस अथाह सागर में माण्ड नामक मोती शब्द तो छोटा है किन्तु अथाह गहराई - गंभीरता को समाए हुए है ।

माण्ड शैली का नाम आते ही सीधे "केसरिया बालम" गीत की मधुर लहरी हमारें मस्तिष्क में गूँजने लगती हैं, या यो कहें कि दोनों ही एक दूसरे के पर्याय बन चुके है - यह माण्ड की विडम्बना है या स्वभाव ।

माण्ड पारम्परिक होते हुए भी केसरिया बालम ही प्रभावी होता है क्योंकि यह गीत एक अन्तरराष्ट्रिय कलाकार द्वारा इतने प्रभावी ढंग से गाया गया है, कि इस गीत की ही अपनी पहचान बन गई, यदि हमें माण्ड को एक उच्च स्तर पर पहुँचाना है तो उसके लिए संभव है कि हम किसी अन्य श्रेष्ठ कलाकार द्वारा अन्य माण्ड को इतने प्रभावी ढंग से प्रस्तुत किया जाए कि अन्य गीतों के द्वारा भी माण्ड पहचानी जा सके । माण्ड गीत में काव्य, साहित्य, भाषाशैली ये सभी एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं, माण्ड विशुद्ध भारतीयता के अस्तित्व को कायम रखने में सहायक है । वर्तमान में जहाँ जनसमुह का पाश्चात्य संगीत की ओर आकर्षण, रिमिक्स की ओर झुकाव वहाँ परम्परागत शैली "माण्ड"

की एक प्रभावशाली और सशक्त अभिव्यक्ति शुद्ध व ताजी हवा का झोंका है, जिसमें शास्त्रीय संगीत का पुट है । मन को शांती प्रदान करनेवाली अदम्य शक्ती है । ऐसा संगीत जो कि कान फोड़ संगीत से परे अपने आप ही जन मानस को आकर्षित करने का महत्तम गुण रखता है । संगीत जगत से जुड़े कलासाधकों का प्रयास वर्षो पुराने अपने संगीत की धरोहर को संजों कर समाज में उचित स्थान दिलाना रहा है, संगीत के प्रति उन कलाकारों के साथ-साथ शास्त्रीय कलाकारों द्वारा "माण्ड शैली" को प्राथमिकता दी जाए ।

सरकारी व गैर सरकारी संस्थाओं द्वारा "माण्ड" समारोह जैसे कार्यक्रमों का आयोजन किया जाए जिसके अन्तर्गत राज्यस्तर के कलाकारों से लेकर राष्ट्रीय स्तर के कलाकारों को प्रस्तुति का अवसर दिया जाए ।

राजस्थान कला संस्कृति व पर्यटन विभाग आदि विभिन्न संस्थाओं द्वारा देश के अतिरिक्त राज्यों के सांस्कृतिक विभागों से सम्पर्क करके समय समय पर दूसरे राज्यों में "माण्ड" के विभिन्न कार्यक्रमों का आयोजन किया जाए । राज्य व राष्ट्रीयस्तर कि विभिन्न संगीत अकादमियों द्वारा "माण्ड" शैली का प्रचार प्रसार पर अधिक ध्यान केन्द्रित किया जाए। समय समय पर लोक पर्वों पर संगीत सभाओं का आयोजन करके राज्यस्तर से अन्तरराष्ट्रिय स्तर के कलाकारों तक को आमन्त्रित कर सामान्य जनता, व कलाप्रेमियों, रसिक श्रोताओं तक के सम्मुख कार्यक्रम किए जाए ।

सरकार द्वारा समय-समय पर निशुल्क शिक्षण शिविर लगाये जायें जिनके अन्तर्गत श्रेष्ठ कलाकारों को नियुक्त किया जाए, शिविर में शिक्षा ग्रहण कर रहे शिष्यों द्वारा अन्त में मंच प्रदर्शन का आयोजन किया जाए तथा उभरते कलाकारों की प्रतिभा को प्रोत्साहित किया जाए । माध्यमिक शिक्षा से लेकर विश्व विद्यालय के स्तर तक के पाठ्यक्रम में माण्ड को अभ्यास के रुप में सम्मिलित किया जाए तथा यु.जी.सी. व पी.जी. स्तर पर माण्ड के विभिन्न प्रकारों पर चर्चा के रुप में सम्मिलित किया जाए तो राजस्थान की इस गढ़ गायकी के स्तर को बढ़ाया जा सकता है।

*****